पंचम अध्याय

(गुप्तकाल से लेकर आठवीं सदी तक)

वर्ण व्यवस्था का विकास –

वर्ण–व्यवस्था के प्रारंभिक रूप की झलकियां ऋग्वेद से ही शुरू हो जाती है। गुप्त काल में ब्राह्मणों का प्रभुत्व अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। उन्होंने पूरे भारतीय समाज को चार वर्गों में बाँटने का प्रयत्न किया। याज्ञवल्क्य वर्णों को जातियों में परिवर्तित करने का प्रयत्न करते हैं। स्मृतियों के मत को उद्धृत करते हुए अमरकोष में कहा गया है कि 'वर्ण' शब्द ब्राह्मण, क्षत्रिय, विट (वैश्य) एवं शूद्र इन चार का ही द्योतक है।[1] कालिदास ने चार वर्णों वाले संसार की उत्पत्ति विष्णु से बताई है।[2] वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में एक नगर में ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों के मकानों के अलग–अलग दिशाओं में बनवाने की व्यवस्था की है।

विवेच्यकाल में विद्वान ब्राह्मणों को कर–मुक्ति भूमिदान देने की जिस प्रथा का प्रारम्भ शक–सातवाहन काल में हुआ था उसे गुप्तों, वाकाटकों एवं उनके समकालीन राजवंशों से पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। इन भूमिदानों के माध्यम से सामंतीय समाज व्यवस्था का जन्म हुआ। कुमारिलभट्ट (लगभग 700 ई0) ने कर्म के आधार पर वर्ण के सिद्धान्त की तीव्र आलोचना की। उसके अनुसार यदि वर्ण का आधार कर्म हो तो जब कोई व्यक्ति अच्छा कार्य करे तो ब्राह्मण हो जाएगा और जब बुरा कार्य करे तो ब्राह्मण हो जाएगा और जब बुरा कार्य करे तो शूद्र

---

[1] अमरकोष, 2/7/2, पिप्रक्षत्त्रिथ विट्शूद्राश्चातुर्वण्यमितिस्मृतम्।
[2] रघुवंश 10/20 चतुवर्णभयो लोकस्त्वत्तः सर्व चतुर्भुखात्।।

हो जाएगा। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की कोई निश्चित जाति नहीं होगी। इस प्रकार जाति और वर्ण दोनों के सिद्धान्तों का प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ा। प्रारम्भ में (ऋग्वैदिक काल) में वर्ण गुण और कर्म पर आधारित था परन्तु भारतीय समाज व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों के कारण आठवीं सदी ई0 तक वर्ण जाति का पर्यायवाची शब्द हो गया था।

धर्मसूत्रों और प्रारम्भिक स्मृतियों के काल में जाति व्यवस्था ने विकसित रूप प्राप्त कर लिया था। अब वर्ण और जाति में मूलभूत अन्तर यही रह गया था कि वर्ण केवल चार थे जबकि जातियाँ अनेक थीं और उनकी संख्या निरन्तर बढ़ती गई। यवन, शक, कुषाण आदि जातियाँ विदेशी थी। उन्होंने अधिकतर प्रशासन में भाग लिया अतः गुप्तकाल से पूर्व ही उन्हें क्षत्रिय वर्ण में स्थान दे दिया गया। इसका अर्थ यह था कि इस काल में भी गुण और कर्म के आधार पर वर्ण निर्धारण की परंपरा कुछ अंश में विद्यमान रही।

इस काल में साधारणतया व्यक्ति अपनी जाति में विवाह करते थे किंतु कई ऐसे उदाहरण उपलब्ध है जिनसे यह स्पष्ट है कि कुछ व्यक्तियों ने अभिरुचि और गुणों को प्रमुख मानकर अपनी जाति के लिए निर्धारित कार्य नहीं किया। मयूरशर्मा ब्राह्मण था किन्तु उसने क्षत्रिय योद्धा के रूप में शासन किया। चन्द्रगुप्त द्वितीय संभवतः वैश्य था, कुछ विद्वान चन्द्रगुप्त द्वितीय को क्षत्रिय तथा कुछ ब्राह्मण भी मानते हैं। अपितु उसकी पुत्री प्रभावती गुप्ता का विवाह वाकाटक वंश के ब्राह्मण राजकुमार रुद्रसेन के साथ हुआ। कर्म के अनुसार दोनों क्षत्रिय थे। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि कुछ वंशों में वर्ण व्यवस्था का सिद्धान्त अब भी मान्य था।

क्षत्रियों और अधिकतर वैश्यों का भी इस काल में यज्ञोपवीत संस्कार होता और वे द्विज कहलाते थे। इस काल के अनेक वैश्यों ने पुष्कल धनराशि दान में देकर पाटलिपुत्र के प्रसिद्ध चिकित्सालय की स्थापना की। वैश्यों की अपनी श्रेणियां थीं। उनका देश के उद्योग पर पर्याप्त प्रभाव था। इसीलिए उनके प्रतिनिधि नगर निगम की कार्यकारिणी के सदस्य होते थे। संभव है कि गुप्त काल में कुछ वैश्यों की स्थिति जो निर्धन थे, शूद्रों जैसी हो गई।

याज्ञवल्क्य के अनुसार यह सुनिश्चित करना राजा का पुनीत कर्तव्य है कि विभिन्न वर्णों के लोग अपने वर्ण के लिए निर्धारित कार्य तथा व्यवसाय ही करे। वर्णाश्रम धर्म का उल्लंघन करने वालों को राजा धर्मविहित मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करे और यदि आवश्यक हो तो दण्ड भी दे।[3] मनु ने राजा को निर्देश देते हुए कहा कि यदि वैश्य एवं शूद्र जातियों के लोग अपने लिए निर्धारित कार्यों में नहीं लगते या लगाये जाते हैं तो वे संसार में उपद्रव करेंगे।[4] इस काल में गुण और कर्म पर आधारित वर्ण सिद्धान्त और जन्म पर आधारित जाति सिद्धान्त दोनों ही का प्रभाव समाज पर पड़ा है।

ब्राह्मण –

गुप्तकालीन समाज में भी पारंपरिक चार वर्ण विद्यमान थे। समाज में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोच्च था। याज्ञवल्क्य ने ब्राह्मण के कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि ब्रह्मा ने वेद तथा धर्म की सुरक्षा के लिए और पितरों एवं देवताओं की संतुष्टि के लिए ब्राह्मणों का सृजन किया

---

[3] याज्ञवल्क्य, 1/361 कुलानि जातीः श्रेणीश्च गणांजानपदानपि। स्वधर्माश्च्चलितान्नाजा विनीय स्थापयेत्पथि।।

[4] मनुस्मृति, 8/418, वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत्। तौहि च्युतौ स्वकर्मभ्यः क्षोभयेतामिदजगत्।

था।[5] समुद्रगुप्त के नालंदा ताम्रपत्र अभिलेख में त्रिवेदी जपभद्विस्वामी का उल्लेख है। चतुर्वेदी ब्राह्मणों के भी विवरण मिलते हैं।[6] इस काल के अभिलेखों तथा साहित्यिक साक्ष्यों में ब्राह्मणों के उल्लेख उनके गोत्रों सहित मिलते हैं। चतुर्भाणी में शांडिल्य गोत्रीय ब्राह्मण भवस्वामी तथा कात्यायन गोत्रीय सारस्वतभद्र के विवरण है। वाकाटक शासक प्रवरसेन द्वितीय के चम्पक दानपत्र अभिलेख में वत्स, भरद्वाज, पाराशर, गौतम एवं शांडिल्य गोत्र वाले ब्राह्मणों के उल्लेख हैं।[7]

धर्मशास्त्रों तथा पुराणों आदि में ब्राह्मणों के तीन प्रमुख कर्तव्य बताये गये हैं– वेदाध्ययन, यज्ञ करना तथा दान देना।[8] याज्ञवल्क्य के अनुसार ब्राह्मण कर्म से श्रेष्ठ होते हैं, ब्राह्मणों में भी वेदाध्ययन करने वाले अधिक उत्कृष्ट हैं और शास्त्रोक्त क्रियाओं का अनुष्ठान करने वाले तथा आध्यात्म तत्व के ज्ञाता सर्वश्रेष्ठ होते हैं।[9] मंदसोर प्रशस्ति में ऐसे ब्राह्मणों का उल्लेख है जो मोक्ष–प्राप्ति के लिए समस्त सांसारिक ममत्व से मुक्त होकर तप, इंद्रिय–निग्रह एवं समाधि में लीन रहते थे। दशपुर नगर (मंदसोर) में निवास करने वाले ब्राह्मणों के विषय में कहा गया है कि सत्यनिष्ठ, धैर्यवान, आत्म–निग्रही, धार्मिक व्रतों में रत, अध्ययनशील, विद्वान, तपस्वी, शांत तथा गंभीर स्वभाव के थे।[10] 571–72 ई0 के मालिप अभिलेख के अनुसार ब्राह्मण रुद्रभूति को पंच महायज्ञों के संपादन के

---

[5] याज्ञवल्क्य 1/198 तपस्तप्त्वाऽसृजद् ब्रह्मा ब्राह्मणान्वेदगुप्तये। तृप्त्यर्थं पितृदेवानां धर्म संरक्षणाय च।।

[6] स्कंदगुप्त का इंदौर अभिलेख (से0ई0 पृ0 310)

[7] गुप्तकालीन अभिलेख पृ0 372–74

[8] मनु 1/88

[9] याज्ञवल्क्य 1/199 सर्वस्य प्रभवो विप्राःश्रुताध्ययनशीलेनः। तेभ्यः क्रियापराः श्रेष्ठास्तेभ्योऽप्यध्यात्मवित्तमाः।।

[10] वही पृ0 82

लिए भूमि दान दी गई थी। हितोपदेश में अपने लिए यज्ञ करने में संलग्न एक ब्राह्मण का उल्लेख है।[11]

'सत्व' ब्राह्मणों का एक आवश्यक तथा विशिष्ट गुण था। कालिदास के अनुसार पशु–हत्या (धार्मिक–यज्ञों में पशुबलि के रूप में) जैसे क्रूर कर्म करने वाला वेदपाठी ब्राह्मण भी स्वभाव से दयालु होता है।[12] दान देना भी ब्राह्मणों के कर्तव्यों में शामिल था यद्यपि दान देने वाले ब्राह्मणों के बहुत कम उल्लेख मिलते हैं। समाज में सदाचारी एवं विद्वान ब्राह्मणों को अत्यधिक सम्मान प्राप्त था। मृच्छकटिक नाटक में ब्राह्मण चारुदत्त बड़े संकोच के साथ कहता है कि ''मैं (न्यायाधीश के समक्ष) यह कैसे कहूं कि गणिका वसंतसेना मेरी प्रेमिका है।[13] इसी नाटक में अन्यत्र शर्विलक कहता है कि ''मैं वेदज्ञ ब्राह्मण का पुत्र हूँ, तथापि वेश्या मदनिका के लिए मुझे चोरी जैसा अनुचित कार्य करना पड़ रहा है।[14]

मालविकाग्निमित्र नाटक में ब्राह्मण विदूषक पर तरह–तरह के असम्मान सूचक कटाक्ष इसलिए किए हैं, क्योंकि वह जन्म से तो ब्राह्मण था पर कर्म से नहीं। अमरकोष में ब्राह्मण–बंधु का प्रयोग एक निंदासूचक शब्द के रूप में ब्राह्मणोचित आचार से रहित ब्राह्मण के लिए किया गया है।[15] ब्राह्मण को शैक्षणिक, राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक विशेषाधिकार उसे प्राप्त था। समूचे धर्म का पालन करने और समस्त क्रियाएँ कराने का अधिकार उसे ही था। ब्राह्मण सभी वेदों का ज्ञाता और सभी विधाओं का मर्मज्ञ होता था। विद्वता

---

[11] हितो, पृ0 347
[12] शांकुतल, 6/1
[13] मृच्छकटिक, 9 पृ0 328, भो अधिकृताः मया कयमीदृशे वक्तव्यं यथागणिका मम मित्रमिति।
[14] वही पृ0 120
[15] अमरकोष – 3/3/04

और ज्ञान के कारण भी समाज में उसका विशिष्ट स्थान था। कम से कम धर्मसूत्रों के समय से अध्यापन, पौरोहित्य कर्म, यज्ञादि कराना तथा भिक्षाटन या प्रतिगृह ब्राह्मणों के जीवन–यापन के लिए धर्मोचित साधन तथा व्यवसाय मान लिये गये थे। हितोपदेश से हमें पता चलता है कि उज्जयिनी के माधव नाम के एक ब्राह्मण से राजा के लिए पावन श्राद्ध सम्पन्न करने के लिए कहा गया था।[16]

पंचतंत्र का रचयिता ब्राह्मण विष्णुशर्मा प्रकांड विद्वान तथा उत्तम अध्यापन के लिए सुविख्यात था।[17] ब्राह्मण अध्यापक दो प्रकार के होते थे। निःशुल्क विद्यादान करने वाले और धन या दक्षिणा लेकर पढ़ाने वाले। यज्ञ संपन्न करने वाले तथा पौरोहित्य कर्म द्वारा जीवनयापन करने वाले पुरोहितों की संख्या सभी कालों में सर्वाधिक रही है।

ब्राह्मण राजनीतिक विशेषाधिकार में राजमंत्रियों के पुरोहित को प्रधान स्थान था। तथा न्याय व्यवस्था से भी सम्बद्ध थे। 484 ई0 के एरण अभिलेख में कहा गया है कि जिस राज्य की प्रजा का नेतृत्व ब्राह्मण करता है, वह समृद्ध रहता है।[18] वाकाटक तथा कदम्ब राज्यों के संस्थापक क्रमशः विन्ध्यशक्ति एवं मयूरशर्मा भी ब्राह्मण जाति के थे। परिव्राजक वंश का संस्थापक हस्ति्न भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण था। ब्राह्मण मातृविष्णु, बुधगुप्त का सामंत था और उसका अनुजधन्यविष्णु हूण शासक तोरमाण के अधीन एरण का शसक हो गया था। कात्यायन के अनुसार विद्वान एवं सुयोग्य ब्राह्मण को ही मंत्री नियुक्त करना चाहिए।[19]

---

[16] हितोपदेश, 12 पृ0 367

[17] पंचतंत्र, पृ0 6

[18] गोयल, पूर्वोद्वत, पृ0 289 स्वस्त्यस्तुगो– ब्राह्मव (पु) रोगाभ्यः सर्व्वप्रजाभ्य इति।

[19] कात्यायन श्लोक, 11, एतैरेव गुणैर्युक्तममात्यं कार्यचिन्तकम्। ब्राह्मणं तु प्रकुर्वीत नृपभक्त कुलोद्वहम्।।

पांचवी सदी ई0 के एक अभिलेख से पता चलता है कि सोम नामक ब्राह्मण वाकाटक शासक देवसेन का मंत्री थी। इसी प्रकार चन्द्रगुप्त द्वितीय का मंत्री ब्राह्मण वीरसेन था। ब्राह्मण पृथ्वीषेण पहले महासांधिविग्रहिक था और बाद में कुमारगुप्त प्रथम के राज्यकाल में महाबलाधिकृत के पद पर नियुक्त हुआ। वह चन्द्रगुप्त द्वितीय के मंत्री शिखरस्वामी का पुत्र था।[20]

बृहस्पति ने कहा है कि पवित्र आचरण वाले, स्वधर्म–कर्मनिष्ठ तथा विद्वान ब्राह्मण ही संदिग्ध कानूनी मामलों में सही निर्णय देने के अधिकारी होते हैं। बृहस्पति ने ब्राह्मण को न्यायरूपी वृक्ष का मूल कहा है। कात्यायन ने न्यायालय में धर्मशास्त्रों/राजनीतिक के विद्वान और सच्चरित्र ब्राह्मणों का होना आवश्यक माना है।[21] इस प्रकार ब्राह्मण की राजनीतिक महत्ता शास्त्रज्ञ पुरोहित के रूप में समाज और राज्य में प्रभावकारी थी।[22]

इसी प्रकार गुप्तोतर काल में भी राजा के अभिषेकोत्सव में ब्राह्मण प्रमुख रूप से सम्मिलित होता था। इस युग में ब्राह्मण धर्म का उत्कर्ष चरम सीमा पर पहुँच गया था। गुप्त राजाओं के राजपुरोहित राज्य की समस्त धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न करवाते थे। गुप्त सम्राटों के यज्ञ ब्राह्मण पुरोहित ने कराए थे। उस युग में ब्राह्मणों का अनुपम आदर–सम्मान था। राजा जनमेजय का यज्ञ ब्राह्मणों ने ही सम्पन्न कराया था। विना ब्राह्मण पुरोहित के कोई भी यज्ञ अथवा धार्मिक कार्य सम्पन्न नहीं माना जाता था। अपना तथा दूसरों का पुरोहित बनना ब्राह्मण का प्रमुख कर्तव्य था।[23] सम्राट हर्ष के राजदरबार में अनेक ब्राह्मण थे जो विभिन्न

---

[20] करमदांडा अभिलेख, गोयल पूर्वोहत पृ0 162–63.
[21] कात्यायन, श्लोक 57.
[22] गौतम धर्मसूत्र 13.26 राजा प्राक्विवाको ब्राह्मणोवशास्त्रवित्।
[23] गौतम धर्मसूत्र 10.2 ब्राह्मणस्याधिकाः प्रवचनायाजन प्रतिग्रह्यः।

प्रकार से राजकार्य में सहायता प्रदान करते थे। धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करवाने के बदले पुरस्कार–स्वरूप हर्ष ब्राह्मणों को प्रभूत दान देता था।[24]

राजा को ब्राह्मणों के प्रति उदार, सहिष्णु एवं श्रद्धालु होने का स्पष्ट निर्देश दिया गया है, तथा पर्याप्त राजकीय संरक्षण मिला था।[25] याज्ञवल्क्य के अनुसार राजा तीनों वेदों के ज्ञान से सम्पन्न ब्राह्मणों को वृत्ति दे, अपने दुर्ग में उनके आवास की व्यवस्था करे, उन्हें भोग के लिए सभी आवश्यक सुविधायें एवं वस्तुयें प्रदान करे और इन अनुदानों से सम्बन्धित शासनादेश लिखित रूप से जारी करे।[26] कात्यायन ने ब्राह्मणों का सम्मान करना राजा के तीन प्रमुख कर्तव्यों में शामिल करते हुए[27] यह कहा कि इस पुण्य कर्म से वह इन्द्र के पद को प्राप्त करता है। समुद्रगुप्त द्वारा ब्राह्मणों को लाखों गायें तथा स्वर्ण मुद्रायें दान करने का उल्लेख है। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने ब्राह्मणों के कल्याणार्थ दो सत्रों में से प्रत्येक के पास दश दीनार अक्षय नीवी धर्म के रूप में जमा किये थे। मालविकाग्निमित्र नाटक से हमें ज्ञात होता है कि राजघरानों तथा ब्राह्मणों को दिये गये दानों का वितरण राजपुरोहित के माध्यम एवं परामर्श से किया जाता था।[28]

विद्वान ब्राह्मणों को कर मुक्त भूमि दान देने के प्राचीनतम उल्लेख उत्तर वैदिक साहित्य में मिलते हैं।[29] शक सातवाहन राजाओं ने इस प्रथा को

---

[24] हर्षचरित पृ0 89, 11/12 आदि।

[25] नारद, 8/34–35

[26] याज्ञवल्क्य 1/323, नातः परतरो धर्मो नृपाणां यद्रणार्जितम्। विप्रेभ्यो दीयते द्रव्यं प्रजाभ्यश्चाभयं सदा।।

[27] कात्यायन, श्लोक 15.

[28] मालविकाग्निमित्र, 5 पृ0 103

[29] शतपथ ब्राह्मण (7/1/1/4) में ब्राह्मणों को भूमि दिये जाने के उल्लेख हैं जिन्हें प्राचीनतम माना जा सकता है।

प्रोत्साहित किया था।[30] और गुप्त–वाकाटक युग में इसका व्यापक प्रचलन हो गया था।

कुमारगुप्त प्रथम के धनैदह अभिलेख में ब्राह्मणों को दिये गये भूमिदानों के उल्लेख आये हैं।[31] समाज में ब्राह्मणों के सर्वोच्च स्थिति होने के कारण उन्हें कुछ विशेष अधिकार प्राप्त थे। जिनसे अन्य सभी जातियों के लोग नियमतः वंचित थे। श्रोत्रिय ब्राह्मणों द्वारा भिक्षा या दान में प्राप्त संपत्ति आदि पर कोई कर नहीं लगाया जाता था। उनकी पैतृक संपत्ति भी कर से मुक्त होती थी। बृहस्पति ने ब्राह्मण कृषक को इस आधार पर राज्य कर से मुक्त मान लिया कि वह आध्यात्मिक साधनों द्वारा लोगों की रक्षा करता है। मृच्छकटिक नाटक में शर्वलिक नामक ब्राह्मण कहता है कि धन का लालची होने पर भी मैंने कभी न तो ब्राह्मण का धन लिया और न ही किसी के द्वारा यज्ञ के लिए संचित सोना चुराया।[32] नारद के अनुसार जो ब्राह्मण क्षत्रिय अर्थात् वेदों के विद्वान नहीं है, और अपने लिए निर्धारित कार्यों एवं व्यवसायों का अनुपालन नहीं करते हैं, उनसे सभी प्रकार के कर लिये जाने चाहिए।[33]

साधारण ब्राह्मणों को भी समस्त जातियों में न्यूनतम दण्ड दिया जाता था, और किसी भी अपराध के लिए उन्हें सामान्यतया मृत्यु दण्ड नहीं दिया जाता था।[34] मनु ने ब्राह्मण को अंदड्य मान लिया, जबकि अन्य जातियों के लोगों के

---

[30] शक शासक नहपान के दामाद उषवदान ने 16 ग्राम ब्राह्मणों को दान में दिये थे। तथा कार्ले अभिलेख (वही पृ0 312) में गौतमी पुत्र शातकर्णी के शासन के 18वें वर्ष के नासिक अभिलेख के अनुसार समस्त करों एवं विभुक्तियों सहित भूमि ब्राह्मण को दान में दी गई थी। वही पृ0 191–92

[31] गोयल, पूर्वोद्धृत, पृ0 151–53

[32] मृच्छकटिक 4, पृ0 191

[33] नारद, 6/14

[34] नारद, 6/14

लिए विभिन्न प्रकार के दण्डों का प्रावधान किया।[35] यह नियम केवल क्षत्रिय एवं चरित्रवान ब्राह्मणों पर ही लागू थे। याज्ञवल्क्य के अनुसार चोरी करने वाले ब्राह्मण के ललाट पर चिन्ह अंकित कराके राजा उसे राज्य से निष्कासित कर दे।[36]

शूद्रककृत मृच्छकटिक नाटक में भी ब्राह्मण के अवध्यता का समर्थन किया गया है। और ब्राह्मण चारूदत्त के विषय में कहा गया है कि यह हत्यारा (होते हुए भी) अवध्य है। अतः इसे राज्य से निष्कासित कर दिया जाए।[37] परन्तु इस सन्दर्भ में चारूदत्त को चाडांलों द्वारा शूली पर चढ़ाने के लिए वध्य स्थल को ले जाने का राजा ने आदेश देकर उसकी अवध्यता विषयक नियम को तोड़ दिया, यद्यपि अन्य कारणों से उसे अंततः मृत्युदण्ड नहीं दिया जा सका।

ब्राह्मण की राजा से तुलना करते हुए बृहस्पति ने कहा कि ये दोनों अपने–अपने व्रतों के पालन में तत्पर रहते हैं। ब्राह्मण धर्म विहित साधनों द्वारा लोगों की रक्षा करते हैं। अतः दोनों में कोई अन्तर नहीं है।[38] याज्ञवल्क्य ने उत्तम आचरण, शास्त्र ज्ञान तथा अध्यात्म–चिंतन के आधार पर ब्राह्मणों को विभिन्न कोटियों में विभाजित किया है। हितोपदेश के अनुसार बुद्धिमान एवं विद्वान होने पर ब्राह्मण दानादि प्राप्त करने का अधिकारी होता है।[39] वायुपुराण में कहा गया है कि वेदों के ज्ञान से रहित तथा वेदाध्ययन से विरत रहने वाले

---

[35] नारद (चौरप्रतिषेध प्रकरण) श्लोक 36,
दश– स्थानानि दंडस्य मनुः स्वायंभुवेऽब्रवीत्।
त्रिषु वर्णेषु यानि स्युब्राह्मणस्त्वक्षतः सदा।।

[36] याज्ञवल्क्य 2/270

[37] वही, 9/39

[38] बृहस्पति, 17/42
ब्राह्मणश्चैव राजा च द्वावप्यैतौ दृढ़व्रतौ।
नानयोरन्तर किंचित् प्रजा धर्मेन रक्षतोः।।

[39] हितोपदेश, 9 पृ0 177

ब्राह्मणों को श्राद्ध में आमंत्रित नहीं करना चाहिए।[40] ब्राह्मण भूलोक के देवता कहे गये है। ब्राह्मणों की पवित्रता पर भी बल दिया जाता था। इस काल के ग्रंथों के अनुसार ब्राह्मण को शूद्र का अन्न नहीं ग्रहण करना चाहिए क्योंकि इससे आध्यात्मिक बल घटता है। याज्ञवल्क्य के अनुसार स्नातकों को शूद्र और पतितों का अन्न नहीं खाना चाहिए।

ह्वेनसांग ने लिखा है कि अनेक वर्ण और जातियों में ब्राह्मण सबसे अधिक पवित्र थे। और उन्हें सबसे अधिक सम्मान मिलता था। ब्राह्मणों को क्षत्रिय, आचार्य तथा उपाध्याय भी कहा जाता था। ऐसे ब्राह्मण दान के पात्र समझे जाते थे। किन्तु बदलते हुए सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिवेश में ब्राह्मणों को इन निर्दिष्ट व्यवसायों में आजीविका चलाना कठिन था। मेधातिथि के अनुसार विदेशी आक्रमण से यदि खतरा हो और सामाजिक दुर्व्यवस्था का भय उत्पन्न हो जाए तो ब्राह्मण शस्त्र ग्रहण कर सकता है।

क्षत्रिय –

इस काल में पारम्परिक गुण–कर्म पर आधारित वर्ण–सिद्धान्त तथा जन्मधारित सिद्धान्त दोनों समानरूप से समाहित थे। क्षत्रिय का स्थान समाज में द्वितीय माना गया यद्यपि समाज में क्षत्रिय का कर्म सर्वाधिक महत्वपूर्ण था तथा समाज तथा देश की रक्षा करना क्षत्रियों का सर्वप्रमुख कर्तव्य था। वायुपुराण के अनुसार ब्रह्मा ने बल (सेना) दण्ड तथा युद्ध के लिए क्षत्रियों को उत्पन्न किया था।[41] अतः अमरकोष में कांडपृष्ठ (सैनिक अथवा योद्धा) शास्त्रजीवा, अस्त्र–शस्त्र

[40] वायु, 82/64, पाटिल, पूर्वोद्धृत पृ0 30
[41] वायुपुराण 8/169

द्वारा जीवन–यापन करने वाला शब्द क्षत्रिय के पर्याय बताये गये हैं।[42] क्षत्रियों में प्रयुक्त होने वाले शब्दों में राजन्य एवं क्षत्र प्राचीनतम है। पाणिनि ने राजन्य को क्षत्रिय का पर्याय बताया है।[43] 'क्षत्र' शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेद में मिलता है। पुराणों में 'क्षत्र' शब्द संपूर्ण क्षत्रिय जाति का द्योतक है।[44] क्षत्रिय शब्द की व्याख्या करते हुए कालिदास ने कहा है कि क्षत्र अर्थात् विनाश से रक्षा करने वाला क्षत्रिय कहलाता है।[45]

बृहत्संहिता के एक सन्दर्भ में क्षत्रिय के लिए 'नृपति' शब्द आया है। विष्णु स्मृति, नारद स्मृति, में वेदाध्ययन यज्ञ करना तथा दान देना ब्राह्मणों के समान क्षत्रियों के भी कर्तव्य बताये गये हैं।[46] उनके लिए अध्यापन, याजन एवं प्रतिग्रह निषिद्ध थे, क्योंकि ये ब्राह्मणों के विशेष अधिकार थे।

कालिदास ने धनुष को क्षत्रिय की प्रमुख पहचान बताई है। विष्णु के अनुसार उसे सदैव अस्त्र–शस्त्रों के अभ्यास एवं प्रयोग में रत रहना चाहिए।[47] देश, समाज तथा अन्य जातियों के लोगों की रक्षा करना क्षत्रियों का सर्वप्रमुख कर्तव्य मान लिया गया था। इस काल के साक्ष्यों में भी उनके इस उत्तरदायित्व पर बल दिया गया है।[48]

---

[42] अमरकोष 2/8/67
[43] पाणिनी, 4/2/36
[44] वायुपुराण 28/37
[45] रघु0 2/53
क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्त्रस्य शब्दों भुवनेषु रूढ़ः
[46] विष्णु, 2/9 द्विजानां यजनाध्ययने।
[47] विष्णु, 2/6, क्षत्रस्य शस्त्रनित्यता।
[48] वही 5/3, क्षत्रियस्य परमोधर्मः प्रजानां परिपालनं

विष्णुपुराण में शास्त्र धारण तथा पृथ्वी की रक्षा करना तथा क्षत्रिय की आजीविका के साधन बताये गये हैं।[49]

ह्वेनसांग ने क्षत्रियों की भूरि–भूर प्रशंसा की है। उसके अनुसार क्षत्रिय राजन्यवर्ग के थे जो पीढ़ियों से शासन करते आ रहे थे।[50] थानेश्वर के क्षत्रियों को उसने शस्त्रोपजीवी बताया है। शासक सामान्यतया क्षत्रिय जाति के होत थे। सेना तथा प्रशासनिक पदों पर भी वे अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक संख्या में नियुक्त किये जाते थे। शर्वनाथ के सोह ताम्रपत्राभिलेख में क्षत्रिय शिवगुप्त को महाबलाधिकृत एवं दूतक कहा गया है।[51] शूद्रककृत मृच्छकटिक नाटक से हमें ज्ञात होता है कि हस्ति–शिक्षा देने में कुशल क्षत्रिय को आदर मिलता था।[52]

मृच्छकटिक नाटक के रचियता शूद्रक क्षत्रिया था। उसे प्रसिद्ध कवि कहा गया है। इस प्रकार अध्ययन–अध्यापन के क्षेत्र में ब्राह्मणों के बाद क्षत्रियों का ही स्थान था। गौड़द्धबहों का लेखक वाक्पति (आठवीं सदी ई0) परमार वंशीय क्षत्रिय था।[53] याज्ञवल्क्य के अनुसार क्षत्रिय वध करने वाला प्रायश्चित स्वरूप एक साड़ सहित 1000 गायों का दान करे अथवा तीन वर्ष तक ब्रह्म हत्या का व्रत करे।[54]

---

[49] विष्णु पुराण 3/8/27 शास्त्रीजीवो महाराक्षा प्रवरा तस्य जीविका
[50] वाट्र्स 2 पृ0 157–160
[51] सेलेवट् इं0 पृ0 393
[52] मृच्छकटिक एक सामाजिक अनुशीलन पृ0 275
[53] मिश्र, एस0एम0 यशोवर्मन ऑफ कन्नौज, पृ0 107
[54] वही, 3/266
ऋषभैकसहस्त्रा गा दद्यारक्षत्रवधेपुमान्।
ब्रह्महत्याव्रतं वापि वत्सरत्रितपं चरेत्।।

वैश्य –

गुप्तकाल में वैश्यों का प्रमुख कर्म कृषि व्यवसाय था। द्विजों में 'वैश्यों', का तीसरा स्थान वैदिक काल में ही निर्धारित हो गया था। गुप्तकाल में 'वैश्य' को श्रेष्ठि, वणिक 'सार्थवाह' आदि नामों से सम्बोधित किया जाता था। धनार्जन वैश्यों का प्रमुख उद्देश्य था।[55] वैश्य को न्यायोचित साधनों द्वारा ही अर्थ–संचय करने का निर्देश दिया गया था। ब्राह्मण एवं क्षत्रियों की भाँति अध्ययन, यज्ञ करना, तथा दान देना वैश्यों के प्रमुख कर्तव्य माने गये थे।[56] और कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्य उनके प्रमुख व्यवसाय थे। बृहस्पति ने वैश्य के व्यवसायों में कुसीद (महाजनी) को भी शामिल किया है। वायु पुराणों में कृषि को वैश्यों का प्रमुख व्यवसाय बताया गया है।[57]

बृहत्संसिता में पशुओं की वृद्धि के लिए वैश्य द्वारा अगस्त्य ऋषि की प्रार्थना करने का उल्लेख है। वैश्यों को पशुओं के प्रति पितृपरक दृष्टिकोण रखना चाहिए तथा उनके प्रति उदासीन नहीं रहना चाहिए क्योंकि ब्रह्मा ने पशुओं की सृष्टि करने के उपरांत इनकी देखभाल करने का उत्तरदायित्व वैश्यों को दिया है। विष्णु पुराण में उल्लेख हुआ है कि न्यायालय में गवाही देने से पूर्व वैश्य को पशु, अनाज, एवं सुवर्ण की शपथ लेनी पड़ती थी।[58] इससे स्पष्ट होता है कि कृषि तथा पशुपालन उनके प्रमुख व्यवसाय थे।

---

[55] उद्योग, 132/30 वैश्यों धनार्जन कुर्यात्।
[56] गौतम 10/1/3
[57] वायु 8/157
वैश्यानेव तु तानाहुः कीनाशान् वृत्तिसाधकान्।।
[58] विष्णु 8/19–22 गोवीजकांचनैवैश्यं शूद्रं सर्वेस्तु पातकै।

व्यवसाय के आधार पर वैश्यों के विभिन्न वर्ग थे कृषक, पशुपालन, व्यापारी एवं धातु का काम करने वाले। वैश्य व्यापारियों की आर्थिक स्थिति एवं सामाजिक प्रतिष्ठा शिल्पों तथा अन्य व्यवसायों में लगे वैश्यों से सामान्यतः अच्छी थी। अमरकोष में वैश्य व्यापारी के निम्नलिखित पर्याय बताये गये है– वैदेहक, सार्थवाह, नैगम, वाणिज, पण्याजीव, आपणिक, और क्रय–विक्रय।[59] मृच्छकटिक में उज्जयिनी के धनाढ्य वैश्य व्यापारियों एवं श्रेणियों के विवरण मिलते हैं। कुमार गुप्त प्रथम के (444 एवं 447ई0) के दामोदरपुर ताम्रपत्र लेखों में धृतिपाल नामक नगरश्रेष्ठि और बंधुमित्र नामक सार्थवाहों के उल्लेख मिलते हैं। इसी प्रकार स्कंदगुप्त के गुप्तसंवत् 141 (460ई0) के सुपिया स्तंभलेख में कैवर्तिश्रेष्ठि और उसका पुत्र हरिश्रेष्ठि वर्णित है।[60]

श्रेणी संगठन तथा साथी के प्रतिनिधि राजदरबार में रहते थे। इस काल के कई अभिलेखों में सार्थवाह तथा प्रथमकुलिक के उल्लेख मिलते हैं।[61] जो नगर/जिलप्रशासन से सम्बद्ध थे। कुछ वैश्य श्रेणी प्रमुखों एवं सार्थवाहों ने मुद्राये भी जारी की थीं जो वैशाली आदि स्थलों से प्राप्त हुई हैं।[62] धनी वैश्य ब्राह्मणों आदि को दान देते थे तथा जनकल्याण के कार्यों में धन लगाते थे। मंदसौर प्रशस्ति के अनुसार रेशम के बुनकरों की एक श्रेणी ने 436 ई0 में दशपुर (मंदसोर) नगर में सूर्य का भव्य मंदिर बनवाया और 472 ई0 में इसके एक भग्न भाग का जीर्णोद्धार कराया था।[63] फाह्यान ने पाटलिपुत्र में वैश्यों द्वारा बनवाये गये एक चिकित्सालय का उल्लेख किया है। नगरों में रहने वाले धनी

---

[59] अमरकोष, 2/9/78
[60] गोपाल, पूर्वोद्धृत, पृ0 257
[61] कुमारगुप्त प्रथम के राजकमल के गुप्त सं0 124 एवं 128 के दामोदरपुर ताम्रपत्रलेख (गोयल पूर्वोद्धृत पृ0 175)
[62] वाट्र्स, 1 पृ0 300, 343
[63] गोयल, पर्वोद्धृत पृ0 354–55

व्यापारियों का सर्वोच्च स्थान था तथा वैश्यों की सामाजिक स्थिति एक समान नहीं थी। 'वैश्य' के प्रधान व्यवसाय कृषि एवं पशुपालन थे। पशुपालन तथा कृषि–कर्म में लगे वैश्यों के दो वर्ग थे– एक स्वतंत्र रूप में कृषि, वाणिज्य और पशुपालन करने वाले वैश्य, और दूसरे वैतनिक भृतक के रूप में कृषि एवं पशुपालन में लगे थे। राज्य को कर प्रदान करने वाला वैश्य ही था। वह अपनी वस्तुओं की बिक्री से हुई आय में से राजा को कर देता था। वैश्य वर्ग अपनी दानशीलता के लिए प्रसिद्ध था।

गुप्त काल में जो वैश्य को श्रेष्ठि, सार्थवाह आदिनामों का उल्लेख मिलता है, इस समाज में पांच प्रकार के वैश्य समाज में हो गए थे।

'स्थानीय वणिक' जो नगर और गाँव में एक स्थान पर रहकर विभिन्न प्रकार का व्यापार करते थे और विविध वस्तुएं क्रय–विक्रय करते थे।[64] 'करवाँ' से सम्बद्ध वे व्यापारी होते थे जो यायावरी जीवन व्यतीत करते थे और दूर–दूर के प्रदेशों में ऊँटों और बैलों से व्यापार के लिए जाते थे।[65]

'सामुद्रिक व्यापारी', विभिन्न उद्योगों में लगे हुए वणिक' साधारण व्यापारी। इस प्रकार वैश्य वर्ग जो अपनी वस्तुओं के विक्रय की आपमें से राजा को कर देता था जिसमें राज्य को अधिकाधिक कर प्रदान करने वाला वर्ग वैश्य ही था। पशु और सुवर्ण का कर (मूलधन) का पचासवां भाग एवं धान्य का छठा, आठवां या बारहवां भाग राजा को प्राप्त होता था।[66]

---

[64] परमार अभिलेख, इपि0 इंडि0 21 पृ0 48

[65] इपि0इ0 11 पृ0 60
उभयभाग्रीव समायात सार्थ उष्ट्र, 10 वृष, 20 उभपादपि उर्द्ध सार्थप्रति।

[66] वही 7/30
पंचाशद्भाग आदेयों राज्ञा पशुहिरण्ययोः।
धान्यानमषृभों भागः षष्ठो द्वादश एवं वा।।

द्विज होने के कारण वैश्यों को कहीं–कहीं ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों के समकक्ष रखा गया है। याज्ञवल्क्य ने यज्ञ में उपस्थित वैश्य का वध करने पर ब्रह्म–हत्या के समान एक वर्ष तक व्रत करने का अथवा एक सांड़ के साथ 100 गायों का दान का नियम बनाया था। विष्णु पुराण के कथनानुसार वैश्य की हत्या करने वाले को नरकगामी बताया गया है।

ब्राह्मण तथा क्षत्रियों की भाँति वैश्यों के भी गोत्र तथा प्रवर होते थे। परन्तु कुल मिलाकर वैश्यों की स्थिति ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों से काफी निम्न थी। कृषि एवं विविध शिल्पों में लगे साधारण आर्थिक स्थिति वाले वैश्य द्विजों की अपेक्षा शूद्रों को अधिक निकट पहुँच गये थे। विष्णु के कथनानुसार वैश्यों का शूद्रों के साथ उल्लेख किया है।

शूद्र –

गुप्तकालीन स्मृतिकारों में परम्परागत वर्ण–भेदक नियमों का पालन किया। वैदिक ग्रन्थों, स्मृतियों तथा पुराणों आदि में शूद्र की उत्पत्ति ब्रह्म के पैरों से बताई गई है। मनुस्मृति में जहाँ शूद्र का परमकर्तव्य (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) तीनों वर्णों की सेवा बताया गया है। वहीं याज्ञवल्क्य स्मृति में उनके प्रति उदार दृष्टिकोण रखा गया है, तथा उन्हें कृषक, कारीकर एवं व्यापारी बनने की स्वीकृति प्रदान की गई है। अमरकोष में 'शूद्र' के लिए तीन पर्याय प्रयुक्त हुए हैं– अवरवर्ग, जघन्यज, तथा वृषल।[67] इनमें जघन्यज अर्थात् जंघाओं से उत्पन्न शब्द ध्यातव्य है क्योंकि अन्य अधिकांश साक्ष्यों में जंघाओं से वैश्य की उत्पत्ति बताई गई है।[68]

---

[67] अमरकोष 2/10/1
शूद्राश्चावणीश्चि वृषलाश्च जघन्यजाः।

[68] वही 2/10/1

पहले ग्रंथों के अनुसार किसी भी उच्च वर्ण (द्विज) को या शूद्र से उत्पन्न द्विज के पुत्रों को दास नहीं बनाया जा सकता था, किन्तु गुप्तकाल की स्मृतियों में द्विजों के लिए ऐसा कोई विशेषाधिकार लक्षित नहीं होता है। याज्ञवल्क्य, नारद और कात्यायन कहते हैं कि दास अनुलोम क्रम से बनाया जाए न की प्रतिलोम क्रम से अर्थात् दास मालिक के वर्ण से नीचे के वर्ण का होना चाहिए।[69] गुप्तकाल में दासों की सामान्य स्थिति अपरिवर्त्तित रही। उन्हें पीटा तथा बेड़ियों में बांधा जा सकता था।[70]

इससे स्पष्ट होता है कि गुप्तकाल में दास प्रथा सामान्यतया शिथिल हो गई थी। ऐसा लगता है कि वर्ण–व्यवस्था कमजोर पड़ गई थी और इस कारण दास प्रथा में भी कमजोरी आ गयी थी। वर्ण–प्रथा का नियम था कि 'शूद्र' को दास बनाना चाहिए। पर गुप्तकालीन पुराणों में जो वर्णन मिलता है, उससे पता चलता है कि वैश्य और शूद्र अपने वर्ण–धर्म का पालन नहीं करते थे।

सातवीं शताब्दी ई0 के पूर्वाद्ध में शूद्रों को खेतिहरों के वर्ग के रूप में वर्णित किया है।[71] किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह महत्वपूर्ण परिवर्तन गुप्तकाल में हुआ होगा। कृषक वर्गों में बहुत बड़ा भाग शूद्र का था। गुप्तकाल में वाणिज्य को भी शूद्रों का कर्तव्य माना जाने लगा। याज्ञवल्क्य कहते हैं कि यदि शूद्र द्विजाति की सेवा से अपनी आजीविका चालने में असमर्थ हो तो वह वाणिज्य कर सकता है।[72] बृहस्पति कहते हैं कि हर प्रकार की वस्तुओं की बिक्री

टीकाकार क्षीरस्वामी ने जघन्यज का अर्थ पैरों से उत्पन्न ''जघन्यात् पादाज्जातः''।

[69] याज्ञवल्क्य, II/82–3,

[70] शूद्रक 'मृच्छकटिक' VIII 25

[71] वाटर्स आन युआन चुआङ्स ट्रैवल्स इन इंडिया 1, पृ0 168

[72] याज्ञवल्क्य 11, 195

शूद्रों का सामान्य कर्तव्य है।[73] पुराणों में भी कहा गया है कि शूद्र क्रय–विक्रय और व्यापारिक लाभ से जीवन निर्वाह कर सकता है।[74]

उच्च वर्णों की तुलना में शूद्रों का जीवनस्तर पूर्ववत् निम्न बना रहा। वराहमिहिर ने गृहनिर्माण के बारे में जो नियम दिये हैं, उनके अनुसार ब्राह्मण के घर में पाँच, कमरे, क्षत्रिय के घर में चार, वैश्य के घर में तीन, शूद्र के घर में दो होने चाहिए। हर स्थिति में मुण्य कमरे की लंबाई–चौड़ाई चारों वर्णों की हैसियत के अनुसार भिन्न–भिन्न होनी चाहिए।[75]

सामान्यतया ब्राह्मण के विरूद्ध किए गए अपराध कर्म के लिए शूद्रों को क्रूर शारीरिक दंड देने के विधान को, नारद ने और कुछ मामलों में बृहस्पति ने दुहराया है। बृहस्पति ने कहा कि शूद्र को आर्थिक दंड नहीं दिया जाए, बल्कि ताड़न, बंधन और निंदन का दंड दिया जाए।[76] शूद्र का अपमान करने वाले ब्राह्मण के लिए 12 1/2 पण के अर्थदण्ड का नियम बना था।[77]

यद्यपि यह कहा गया है कि शूद्रों को शारीरिक दंड दिया जाए, तथापि बृहस्पति ने वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण को दुर्वचन कहने के लिए विहित दंडों की तालिका दी है। फाहियान ने लिखा है कि मध्यदेश में राजा मृत्युदंड या अन्य शारीरिक दंड दिए बिना ही शासन करता था।[78]

गुप्तकाल में कई शिक्षित शूद्रों के उदाहरण दिखाई पड़ते हैं। याज्ञवल्क्य के एक श्लोक से प्रकट होता है कि भृतकों के लिए भी अध्यापक होते थे।

---

[73] बृहस्पति, संस्कार, श्लोक 530, विक्रयः सर्वपण्यानां शूद्रधर्मउदाहतः,
[74] विष्णु पुराण, III 8.32–33
[75] वृहत्संहिता, 52.12–13
[76] वृहस्पति, IX 20
[77] मनु, 8/67–68
[78] जे0 लेगि0 'ए रेकार्ड ऑफ बुद्धिस्टिक किंगडम्स' पृ0 43

विद्वान शूद्रों का अस्तित्व व्रज सूची से भी प्रमाणित होता है, जिसमें वेद, व्याकरण, मीमांसा, सांख्य, वैशेषिक आदि शास्त्रों के ज्ञाता शूद्रों की चर्चा है।[79]

गुप्त काल में शूद्रों के धार्मिक अधिकारों में वृद्धि हुई और कई कर्मानुष्ठानों के विषय में उन्हें तीनों उच्च वर्णों की समकक्षता मिली। इसके साथ–साथ आर्थिक स्थिति में भी सुधार हुआ।[80]

गुप्तकाल में शूद्रों की हैसियत में भारी परिवर्तन हुए। यह परिवर्तन शूद्रों की राजनीतिक सहविधिक स्थिति में व्यापक रूप से प्रतिफलित हुआ। वर्ण विषयक कानूनों में कुछ सरल और 'शूद्रों' की प्रति बरते जाने वाले कई निष्ठुर नियम रद्द किए गए। अस्पृश्यों की सामाजिक स्थिति पहले से भी अधिक बुरी हुई। यद्यपि वे सिद्धांततया शूद्र माने जाते थे, किंतु सभी व्यावहारिक विषयों में वे पृथक समुदाय ही थे। गुप्तकाल में शूद्रों का कोई अन्य वर्ग भी सामाजिक दृष्टि से अधोगत था।[81]

सभी बातों पर विचार करते हुए कह सकते हैं कि गुप्तकाल में शूद्रों की स्थिति में जो आर्थिक, राजनीतिक सहविधिक, सामाजिक और धार्मिक परिवर्तन हुए वे उक्त समुदाय की बदलती हुई सामाजिक स्थिति के सूचक हैं। निष्कर्षतः गुप्तकाल में शूद्रों की स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ था।

*****

[79] वज्रसूची (एम) पृ0 4
[80] मोरेट और डेवी : फ्राम ट्रइब टु इम्पायार, पृ0 222
[81] घुर्वेः पूर्व निर्दिष्ट पृ0 94